कहते हैं चमगादड़ कानों से देखते हैं

सुशील जोशी



आजकल यह आम जानकारी है कि चमगादड़ देखने के लिए ध्वनि का उपयोग करते हैं। मगर इस बारे में बहुत कम लोग जानते हैं कि हमें यह पता कैसे चला कि चमगादड़ ऐसा करते हैं। तो देखते हैं कि हमें पता कैसे चला और क्या पता चला।

अठारहवीं सदी के एक प्रमुख जीव वैज्ञानिक थे लज़ारो स्पालांज़नी (Lazarro Spallanzani, 1729-1799)। स्पालांज़नी ही वे जीव वैज्ञानिक थे जिन्होंने स्पष्ट किया था कि पाचन मात्र भोजन को पीसने की क्रिया नहीं है बल्कि एक रासायनिक क्रिया है।

उन्होंने मनुष्य व जन्तुओं के शरीर के अन्दर चलने वाली क्रियाओं पर कई अन्य प्रयोग किए थे।

आँखों के बिना भी दिखता है

इन्हीं स्पालांज़नी ने सबसे पहले बताया था कि चमगादड़ों का काम आँखों के बगैर भी चल सकता है। 1793-94 में वे चमगादड़ों और उल्लुओं पर प्रयोग कर रहे थे। वे कुछ उल्लू और चमगादड़ चर्च में ले आए थे। चर्च में तारों के माध्यम से कई सारी घण्टियाँ लटकी हुई थीं। घुप अँधेरे में उन्होंने उल्लूओं को वहाँ छोड़ दिया तो पता चला कि वे उन तारों से टकरा रहे थे क्योंकि जब भी कोई उल्लू तार से टकराता तो घण्टी बजने लगती थी।

इसके बाद स्पालांज़नी ने उस कमरे में चमगादड़ों को छोड़ा। चमगादड़ उड़ते रहे और घण्टी एक न बजी। यानी घुप अँधेरे में भी चमगादड़ तारों से बच-बचकर उड़ पा रहे थे। यह परिणाम तो चकराने वाला था। आँखों का उपयोग करने के लिए तो प्रकाश अनिवार्य है। स्पालांज़नी ने सोचा कि ज़रूर ये चमगादड़ रास्ते की रुकावटों से बचकर निकलने के लिए आँखों के भरोसे नहीं हैं बल्कि किसी अन्य इन्द्रिय का सहारा ले रहे हैं।

तो उन्होंने कुछ प्रयोग किए। दिक्कत यह है कि उनके प्रयोगों के विवरण हमें उपलब्ध नहीं हो पाए हैं क्योंकि उनका कहीं प्रकाशन नहीं हुआ था। हमें तो बस बाद में कुछ अन्य वैज्ञानिकों के पर्चों में लिखी हुई बातों से पता चलता है कि स्पालांज़नी ने ऐसे प्रयोग किए थे। इन प्रयोगों में उन्होंने एक-एक करके सारी इन्द्रियों के उपयोग को रोक दिया। जैसे आँखों पर पट्टी बाँध दी, नाक बन्द करके गन्ध सूँघने की क्षमता को ठप कर दिया, कानों में रूई लगाकर उन्हें बन्द कर दिया, वगैरह।



चित्र-1: लज़ारो स्पालांज़नी।

स्पालांज़नी ने देखा कि एक-एक करके सारी इन्द्रियों का कामकाज ठप करने के बावजूद चमगादड़ बगैर इधर-उधर टकराए मज़े से उड़ते रहे। एक प्रयोग में तो उन्होंने एक चमगादड़ की आँखें गर्म सलाख की मदद से फोड़ दी थीं और एक प्रयोग में चमगादड़ की आँख निकाल दी थी। तो स्पालांज़नी ने निष्कर्ष निकाला कि हो न हो, चमगादड़ किसी छठी इन्द्रिय

का उपयोग करते हैं। यानी इतना तो वे समझ गए थे कि चमगादड़ों को रास्ता खोजने के लिए आँखों की ज़रूरत नहीं है किन्तु उन्हें यह समझ में नहीं आया था कि फिर इन उड़ते स्तनधारियों का काम कैसे चलता है।

अच्छी बात यह रही कि लगभग उसी समय एक और वैज्ञानिक चमगादड़ों की इन्द्रियों पर प्रयोग करके यह जानने की कोशिश कर रहे थे कि चमगादड़ अँधेरे में 'देखते' कैसे हैं।

वे दूसरे वैज्ञानिक स्विट्ज़रलैंड के लुई जूरीन थे। कई आलेखों में उनका नाम चार्ल्स जूरीन बताया गया है। जूरीन ने अपने प्रयोगों के आधार पर 1794 में बताया था कि यदि चमगादड़ के कान अच्छी तरह बन्द कर दिए जाएँ तो उसे उड़ने में दिक्कत होती है। इसे सुनकर स्पालांज़नी ने एक बार फिर ज़्यादा सावधानी से प्रयोग किए। इस बार उन्होंने चमगादड़ के कान में पीतल की नली डालकर कान बन्द किए। उन्होंने देखा कि जब यह नली खुली होती है तो चमगादड़ को कोई परेशानी नहीं होती, जबकि यदि नली के दोनों सिरे बन्द कर दिए जाएँ तो चमगादड़ रास्ते की चीज़ों से टकराने लगता है। और तो और, उन्होंने और जूरीन ने यह भी देखा कि मात्र एक कान अच्छी तरह बन्द किया जाए तो भी चमगादड़ के लिए टकराने से बचना मुश्किल हो जाता है।

इन दोनों वैज्ञानिकों ने निष्कर्ष निकाला कि चमगादड़ कान से 'देखते' हैं। इस अजीबोगरीब निष्कर्ष के लिए इनका खूब मज़ाक उड़ाया गया। उस समय के एक प्रतिष्ठित शरीर रचना शास्त्री जॉर्जेस कुवियर ने ऐसी कपोल कल्पनाओं को सिरे से खारिज कर दिया था। कुवियर का मत था (और सही ही था) कि स्पालांज़नी के प्रयोग निहायत क्रूर थे। मगर इस क्रूरता का हवाला देकर उन्होंने प्रयोग के परिणामों को ही मानने से इन्कार कर दिया। इसके साथ ही बात आई-गई हो गई और अगले सौ साल तक किसी ने चमगादड़ों की दृष्टि पर नज़र नहीं डाली। दरअसल, कुवियर ने एक वैकल्पिक विचार दिया था। उनका कहना था कि चमगादड़ों की जिस छठी इन्द्रिय की तलाश की जा रही है, उसका सम्बन्ध श्रवणेन्द्री से नहीं बल्कि स्पर्श की अनुभूति से है। उन्होंने कहा था कि चमगादड़ के पंख पर छोटे-छोटे उभार होते हैं जो आसपास की परिस्थिति को भाँप लेते हैं।

उस समय और उसके लगभग सौ साल बाद तक कुवियर की बात का दबदबा रहा। 1912 तक वैज्ञानिक समुदाय स्पालांज़नी और जूरीन की बजाय कुवियर को ही सही मानता रहा। गौरतलब बात यह है कि कुवियर के पास अपनी बात के पक्ष में कोई प्रायोगिक प्रमाण नहीं थे।

1908 में एक बार फिर वाल्टर लुइ हॉन ने पाया कि यदि चमगादड़ के कानों को कसकर बन्द कर दिया जाए, तो वह दिग्भ्रमित हो जाता है। उनका

निष्कर्ष था कि चमगादड़ों में 'रुकावटों को मुख्य रूप से अन्दरुनी कान में उपस्थित किसी संवेदी अंग द्वारा ताड़ा जाता है'। कान से पता चल रहा है मतलब कहीं-न-कहीं ध्वनि (आवाज़) से सम्बन्ध बैठता है। किसी को समझ में नहीं आ रहा था कि ये कौन-सी आवाज़ें हैं जिनकी मदद से चमगादड़ सामने उपस्थित रुकावट को भाँप लेता है। समस्या यह थी कि चमगादड़ दीवारों और सामने टंगे तारों जैसी खामोश चीज़ों को भी भाँप लेता था। ये चीज़ें कोई आवाज़ तो करती नहीं, फिर चमगादड़ को कैसे पता चल जाता है।

ध्वनि के ज़रिए तीक्ष्ण दृष्टि

अरस्तू ने कई सदियों पहले देखने की क्रिया के बारे में विचार दिया था कि हमारी आँखों से कोई चीज़ निकलती है, वह जब वस्तु से टकराकर लौटती है तो वह वस्तु हमें दिखाई देती है। यह बात दृष्टि के बारे में तो गलत साबित हुई थी - हमारी आँखों से कोई चीज़ निकलकर वस्तु तक नहीं जाती बल्कि वस्तु से प्रकाश हमारी आँखों तक पहुँचता है। किन्तु 1912 में हिरम मैक्सिम ने शायद अरस्तू के उस विचार को चमगादड़ों पर लागू करके अटकल लगाई कि सम्भवतः चमगादड़ बहुत कम आवृत्ति की आवाज़ निकालता है और वह आवाज़ टकराकर जब वापिस उस तक पहुँचती है तो वह भाँप लेता है कि सामने कोई चीज़ है। फिलहाल यह अटकल ही थी। इसी अटकल को थोड़ा आगे बढ़ाते हुए हैमिल्टन हार्टरिज नाम के एक वैज्ञानिक ने अपनी परिकल्पना प्रस्तुत कर दी - उनका विचार था कि चमगादड़ कम आवृत्ति की नहीं बल्कि उच्च आवृत्ति की आवाज़ का इस्तेमाल करते होंगे। अलबत्ता, ये दोनों ही कह रहे थे कि चमगादड़ कोई ध्वनि फेंकता है और उसकी प्रतिध्वनि के माध्यम से वस्तुओं की स्थिति का पता लगाता है और जो ध्वनि वह फेंकता है वह मनुष्य की श्रवण क्षमता के दायरे के बाहर की होती है।

यहाँ यह जान लेना अच्छा होगा कि आवाज़ की आवृत्ति से क्या मतलब है। ध्वनि हवा या किसी भी माध्यम में से आगे बढ़ती है तो तरंगों के रूप में बढ़ती है। ये तरंगें और कुछ नहीं, उस माध्यम के क्रमशः दबने और फैलने की वजह से बनती हैं। एक सेकण्ड में बनने वाली तरंगों की संख्या को आवृत्ति कहते हैं। जब आवृत्ति ज़्यादा होती है तो आवाज़ पतली होती है; आवृत्ति कम हो तो आवाज़ मोटी होती है। ध्वनि के इस गुण को तारत्व या पिच कहते हैं। मोटी आवाज़ का तारत्व कम और पतली आवाज़ का तारत्व ज़्यादा होता है।

तो मैक्सिम का कहना था कि चमगादड़ मोटी आवाज़ों का उपयोग करते हैं जबकि हार्टरिज कह रहे थे कि चमगादड़ पतली आवाज़ से काम चलाते हैं। मगर दोनों ही कह रहे थे कि चमगादड़ सामने उपस्थित वस्तु

को भाँपने के लिए उनकी अपनी आवाज़ से उत्पन्न प्रतिध्वनि की मदद लेते हैं। इसे नाम दिया गया है प्रतिध्वनि-स्थाननिर्धारण (प्रतिध्वनि-संवेदन) या अँग्रेज़ी में इकोलोकेशन। मगर चमगादड़ तो उड़ते हुए कोई खास आवाज़ वगैरह नहीं निकालते। तो सवाल यह था कि इस अटकल की जाँच कैसे की जाए।

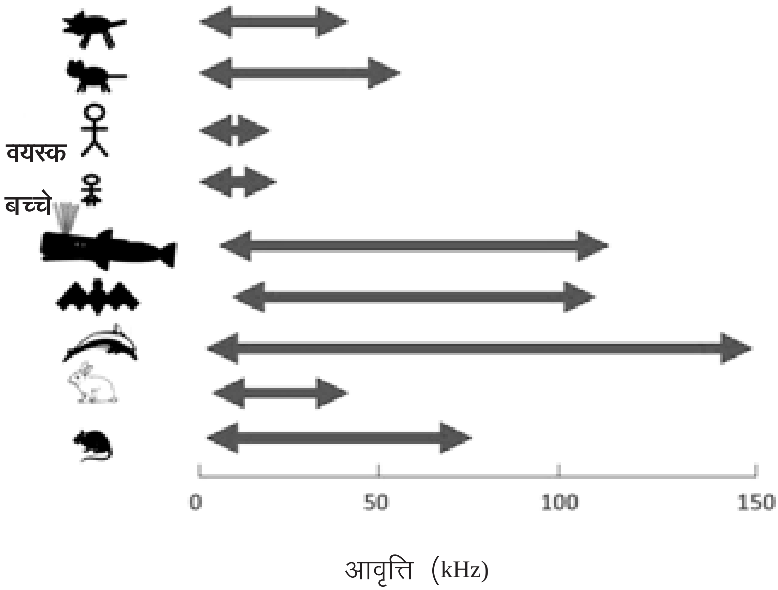
इस सवाल का पहला जवाब आया नेदरलैंड के वैज्ञानिक स्वेन डीकग्राफ की प्रयोगशाला से 1943 के आसपास। डीकग्राफ ने ध्यान दिया कि चमगादड़ पूरी तरह निशब्द नहीं उड़ते। उन्होंने यह भी देखा कि उड़ते वक्त चमगादड़ टिक-टिक की आवाज़ निकालते हैं और इन्हीं टिक-टिक का उपयोग चीज़ों को भाँपने में किया जाता है। उन्होंने देखा कि यदि चमगादड़ के मुँह को ढँक दिया जाए तो इन आवाज़ों की तीव्रता बहुत कम हो जाती है और चमगादड़ यहाँ-वहाँ टकराने लगते हैं। अब मैक्सिम और हार्टरिज की अटकल पर थोड़ा भरोसा होने लगा था।

इसी बीच, दो स्नातक छात्रों ने चमगादड़ों पर काफी परिष्कृत प्रयोग करके पूरी बात को कही-सुनी अटकलों से उठाकर वैज्ञानिक तथ्य बना दिया। ये दो छात्र थे रॉबर्ट गेलेम्बोस और डोनाल्ड ग्रिफिन। 1930 के दशक में हारवर्ड विश्वविद्यालय में कार्यरत भौतिक शास्त्री जी.डब्लू. पीयर्स ने एक उपकरण बनाया था जो मनुष्य की श्रवण क्षमता के दायरे से बाहर की ध्वनियों को पकड़ सकता था। गेलेम्बोस और ग्रिफिन ने इस उपकरण का उपयोग चमगादड़ों पर किया।

इस उपकरण के उपयोग से सबसे महत्वपूर्ण बात यह पता चली कि डीकग्राफ ने जिस टिक-टिक की आवाज़ का ज़िक्र किया था उसके मुकाबले चमगादड़ कहीं ज़्यादा तीव्रता से अल्ट्रासाउंड ध्वनि पैदा करते हैं। यह वह ध्वनि होती है जिसकी आवृत्ति उस ध्वनि से अधिक होती है जिसे मनुष्य सुन सकते हैं। अनुमान है कि चमगादड़ द्वारा पैदा की गई ध्वनि में से मात्र 1 प्रतिशत हिस्सा ही मनुष्य की सुनने की क्षमता में होता है। शेष हिस्सा 20 किलोहट्र्ज़ से ज़्यादा आवृत्ति की ध्वनियों का होता है, जो मनुष्य नहीं सुन सकते।*

तो गेलेम्बोस और ग्रिफिन यह पता करने में कामयाब रहे कि चमगादड़ वास्तव में अल्ट्रासाउंड ध्वनि पैदा करते हैं। ग्रिफिन ने कई प्रयोग करके यह दर्शाया कि चमगादड़ उच्च तारत्व की टिक-टिक उत्पन्न करते हैं और फिर इनकी प्रतिध्वनि का विश्लेषण करके पता करते हैं कि रास्ते में कोई रुकावट है या नहीं। उन्होंने यह भी देखा कि चमगादड़ न सिर्फ इस बात का अन्दाज़ लगा सकते हैं कि उनकी टिक-टिक की प्रतिध्वनि को वापिस

* *एक युवा व्यक्ति की सुनने की क्षमता की सामान्य रेंज 20 हट्र्ज़ से लेकर 20 किलोहट्र्ज़ तक होती है।*



चित्र-2: विभिन्न जानवरों के सुनने के दायरे एवं सीमाएँ।

उन तक पहुँचने में कितना समय लगा और मूल आवाज़ की तुलना में उसकी तीव्रता कितनी है बल्कि यह भी पता कर सकते हैं कि वह प्रतिध्वनि किस दिशा से लौटकर आई है। इस सारी जानकारी को चमगादड़ का दिमाग प्रोसेस करके वस्तु की स्थिति का सटीक निर्धारण कर सकता है।

बातूनी जानवर

इन प्रयोगों के दौरान कई और बातों का खुलासा हुआ। जैसे यह पता चला कि कुछ चमगादड़ जो ध्वनि पैदा करते हैं वह छोटी-छोटी चींची जैसी होती है और प्रत्येक चींची करीब 1 से 15 मिलीसेकण्ड की होती है। यह भी देखा गया कि कुछ चमगादड़ ऐसे हैं जो किसी रुकावट के पास पहुँचते हैं या रुकने वाले होते हैं, तब ये चींची जल्दी-जल्दी दोहराते हैं। अन्य चमगादड़ों में इनकी आवृत्ति लगभग एक समान बनी रहती है। यह भी देखा गया कि कुछ चमगादड़ों की चींची सेकण्ड के दसवें भाग तक लम्बी होती हैं। ग्रिफिन ने अपने मैदानी प्रयोगों में देखा कि चमगादड़ अपनी सामान्य उड़ान के समय प्रति सेकण्ड 5-10 आवाज़ें पैदा करता है किन्तु जब वह किसी कीट के नज़दीक पहुँचता है तो आवाज़ पैदा करने की दर बढ़कर 200 प्रति सेकण्ड तक हो जाती है। प्रति सेकण्ड ज़्यादा आवाज़ों से

वस्तुस्थिति के बारे में बेहतर जानकारी मिलती है।

कुछ उभरते सवाल

अब कई सवाल थे। पहला कि जब कोई चमगादड़ ध्वनि पैदा करता है और उसकी प्रतिध्वनि लौटती है तो वह इन दो आवाज़ों के बीच भेद कैसे करता है। ये आपस में गड्ड-मड्ड क्यों नहीं हो जातीं? दूसरा, क्या अलग-अलग प्रजातियों के चमगादड़ों की चींची इतनी विशिष्ट होती है कि वे खुद पहचान सकें? एक सवाल यह भी था कि क्या चमगादड़ प्रतिध्वनि-स्थाननिर्धारण का उपयोग सिर्फ रुकावटों से बचने के लिए करते हैं या इसका कोई और उपयोग भी है। चौथा सवाल यह था कि क्या सारे चमगादड़ों में यह व्यवस्था पाई जाती है। और एक सवाल यह भी था कि जिन चमगादड़ों में यह व्यवस्था होती है, क्या वे अन्धे होते हैं। और सबसे बड़ा सवाल यह था कि क्या अन्य जन्तुओं में भी ऐसी व्यवस्था होती है।

यहाँ रुककर कुछ बातें स्पष्ट कह देना ज़रूरी है ताकि कोई गफलत न रहे।

पहली बात, सारे चमगादड़ इकोलोकेशन का उपयोग नहीं करते। खास तौर से फलभक्षी चमगादड़ अपनी दृष्टि एवं गन्ध-संवेदना के भरोसे रहते हैं।

दूसरी बात, जो चमगादड़ इकोलोकेशन का उपयोग करते हैं, वे अन्धे नहीं होते। वे देख सकते हैं और अपनी दृष्टि का उपयोग भी बखूबी करते हैं। उनमें गन्ध की संवेदना भी काफी विकसित होती है।

तीसरी बात, चमगादड़ों की अलग-अलग प्रजातियों में अल्ट्रासाउंड की आवृत्ति अलग-अलग होती है। इसलिए वे प्रायः भ्रमित नहीं होते।

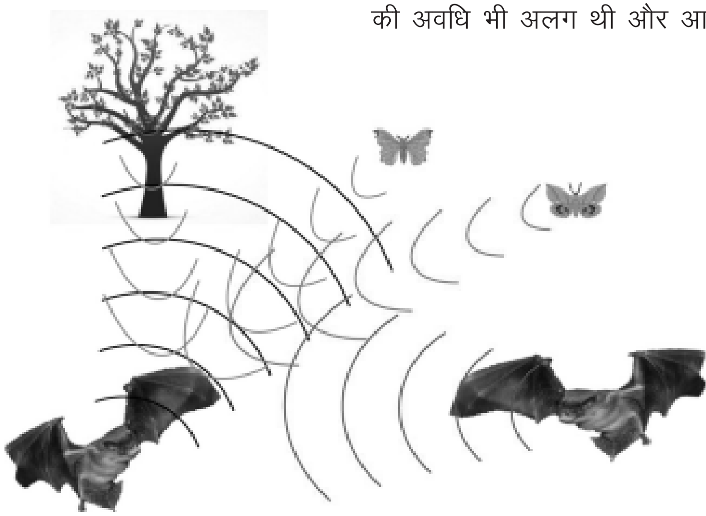
आम तौर पर चमगादड़ इकोलोकेशन के लिए अल्ट्रासाउंड ध्वनियाँ अपने लैरिंक्स से पैदा करते हैं और मुँह से छोड़ते हैं। लैरिंक्स वही अंग है जो मनुष्यों में आवाज़ें पैदा करने में प्रयुक्त किया जाता है। किन्तु कुछ चमगादड़ यह ध्वनि अपनी जीभ की मदद से भी पैदा करते हैं। कुछ चमगादड़ों में आवाज़ को फेंकने का काम नाक से भी किया जाता है।

ग्रिफिन व गेलेम्बोस के शुरुआती काम के बाद 1950 के दशक में यह माना जाने लगा था कि इकोलोकेशन एक कारगर व्यवस्था है जिसकी मदद से चमगादड़ रुकावट से बचकर उड़ सकते हैं। मगर इकोलोकेशन पर लम्बे समय तक शोध करने वाले डोनाल्ड ग्रिफिन के शब्दों में, "स्पालांज़नी ने जो चमत्कारी सरोवर उजागर किया था, उसकी गहराइयाँ लगातार बढ़ती गई हैं।"

प्रयोगों से स्पष्टीकरण

चमगादड़ों की इस चमत्कारी व्यवस्था को समझने में बार-बार उपलब्ध टेक्नोलॉजी की महत्वपूर्ण

भूमिका उजागर होती है। जैसे ग्रिफिन व गेलेम्बोस तभी अल्ट्रासाउंड की उपस्थिति को पहचान पाए जब पीयर्स ने इस तरह की उच्च आवृत्ति वाली ध्वनि को रिकॉर्ड करने की व्यवस्था निर्मित कर ली। 1950 के दशक में अल्ट्रासाउंड कम्पनों को एम्प्लीफाय करने और रिकॉर्ड करने की बहुत अच्छी व्यवस्था न थी। और उसका विश्लेषण करना तो और भी मुश्किल था। उस समय इस काम के लिए जो उपकरण उपलब्ध था वह एक छोटे-मोटे ट्रक में समाता था और काफी वज़नी था। ऐसे उपकरण के साथ मैदानी परिस्थिति में प्रयोग करना मुश्किल था। मगर किसी तरह से ग्रिफिन इसे लेकर एक तालाब के किनारे पहुँच गए। वहाँ चमगादड़ों की दो प्रजातियाँ *एप्टेसिकस फस्कस* (*Eptesicus fuscus*) और *मायोटिस ल्यूसीफ्यूगस* (*Myotis lucifugus*) कीटों का शिकार करते थे। यहाँ प्रयोग करते हुए ग्रिफिन ने पहली बार देखा कि चमगादड़ दो तरह की अल्ट्रासाउंड चींची पैदा करते हैं। जब वे रुकावट से बचने की कोशिश करते हैं तो चींची दोहराव की दर कम होती है, जबकि कीटों को पकड़ते समय दोहराव की दर कहीं ज़्यादा होती है। अर्थात् कीटों का शिकार करते वक्त वे प्रति सेकण्ड ज़्यादा बार चींची कर रहे थे। और तो और, इन दो तरह की ध्वनियों में प्रत्येक चींची की अवधि भी अलग थी और आवृत्ति



चित्र-3: चमगादड़ के लैरिंक्स, जीभ या नाक से निकलती ध्वनि की आवृत्ति कीट या किसी वस्तु से टकराकर वापस आने वाली प्रतिध्वनि की आवृत्ति से कम होती है।

का पैटर्न भी।

लेकिन मैदानी परिस्थिति में इस बात का विश्लेषण करना मुश्किल था इसलिए प्रयोगशाला में कोशिश करना ज़रूरी था। इसमें एक प्रमुख बात यह थी कि एक-एक चमगादड़ को कीड़े पकड़ने के लिए छोड़ा जाता था। एक अकेला *मायोटिस ल्यूसीफ्यूगस* कमरे में छोड़ दिया जाता था और वह फल-मक्खी को पकड़ने की कोशिश करता था। सबसे पहली बात तो यह पता चली कि कीड़े को पकड़ने के दौरान चींची दोहराव की दर में वैसी ही वृद्धि हुई जैसी मैदानी परिस्थिति में देखी गई थी। दूसरा खुलासा यह हुआ कि मनुष्य की श्रवण शक्ति के दायरे में आने वाली आवाज़ों का चाहे जितना शोरगुल हो, चमगादड़ की कीड़े पकड़ने की दर में कोई गिरावट नहीं आती थी। किन्तु यदि हल्का-सा भी अल्ट्रासाउंड शोरगुल हो, तो चमगादड़ कीड़े पकड़ने के अपने प्रयास छोड़कर चुपचाप बैठ जाते थे।

तो ग्रिफिन और गैलेम्बोस द्वारा किए गए प्रयोगों से इतना तो स्पष्ट हो गया कि चमगादड़ अल्ट्रासाउंड ध्वनि कम्पनों का उपयोग चीज़ों को 'देखने' के लिए करते हैं तथा अवरोधों से बचने के लिए और कीड़े-मकोड़े पकड़ने के लिए अलग-अलग किस्म की ध्वनियों का इस्तेमाल करते हैं। ध्वनियों में अन्तर आवृत्ति का भी हो सकता है और उनके दोहराव की दर का भी।

प्रतिध्वनि द्वारा देखना

आप देख ही सकते हैं कि इस तरह चीज़ों की स्थिति का निर्धारण करने में कुछ समस्याएँ हैं। पहली समस्या तो यह है कि जब कोई ध्वनि वातावरण में आगे बढ़ती है तो धीरे-धीरे कमज़ोर पड़ती जाती है। चमगादड़ के लिए इसका असर दोहरा होता है। एक तो वह जो आवाज़ फेंकेगा, वह किसी वस्तु तक पहुँचते-पहुँचते क्षीण होती जाएगी। फिर जब वह क्षीण पड़ चुकी आवाज़ किसी वस्तु से टकराकर वापिस लौटेगी तो और क्षीण हो जाएगी। तो चमगादड़ को काफी ज़ोरदार आवाज़ पैदा करनी पड़ती है। ग्रिफिन ने अपने प्रयोगों में देखा कि यदि चमगादड़ द्वारा पैदा की गई ध्वनि हमारी श्रवण क्षमता के अन्दर हो, तो आवाज़ किसी एम्बूलेंस के सायरन जितनी तीव्र होगी।

किन्तु ज़ोरदार ध्वनियाँ पैदा करने के कारण एक नई समस्या खड़ी हो जाती है। ऐसी ज़ोरदार आवाज़ें (प्रति सेकण्ड 10 से लेकर 200 तक) चमगादड़ की सुनने की क्षमता पर हावी हो जाएँगी। यानी खुद की आवाज़ और प्रतिध्वनि के बीच भेद करना मुश्किल हो जाएगा। इस समस्या से निपटने के लिए चमगादड़ों में एक विशेष व्यवस्था बनी है। उनमें ध्वनि प्रेषण और ग्रहण के बीच एक बन्द-चालू प्रक्रिया होती है। जैसे ही ज़ोरदार प्रेषण-ध्वनि पैदा की जाती है, ध्वनि ग्राही क्रिया को निलम्बित कर दिया

जाता है। यह कार्य कान की हड्डियों से जुड़ी कुछ मांसपेशियाँ करती हैं। जब ये मांसपेशियाँ संकुचित होती हैं तब ये हड्डियाँ ध्वनि को अन्दरुनी कान तक नहीं पहुँचने देतीं। फिर कुछ समय बाद ये मांसपेशियाँ शिथिल पड़ जाती हैं, तो कान अपनी सामान्य श्रवण की अवस्था में आ जाता है।

इसके अलावा चमगादड़ का मस्तिष्क भी इस मामले में कुछ भूमिका अदा करता है। एक तो जब चमगादड़ ध्वनि उत्पन्न करता है तब मस्तिष्क सुनने की क्रिया को थोड़ा मन्द कर देता है; दूसरा मस्तिष्क में प्रतिध्वनि को ताड़ने वाली विशेष तंत्रिका कोशिकाएँ होती हैं जो ध्वनियों की किसी जोड़ी में दूसरी वाली ध्वनि पर ज़्यादा ध्यान देती हैं।

एक समस्या यह है कि प्रतिध्वनि को सुनकर दूरी का अन्दाज़ कैसे लगाया जाए। इसके लिए ध्वनि तरंगों के एक खास गुण का उपयोग किया जाता है। दरअसल चमगादड़ द्वारा पैदा की गई ध्वनियों के विश्लेषण से पता चला है कि उनकी प्रत्येक ध्वनि उच्च आवृत्ति से शुरू होती है और उसकी आवृत्ति धीरे-धीरे कम होती जाती है। अब यह ध्वनि चमगादड़ से दूर की ओर जाएगी। यह जितनी भी दूर जाएगी, इसकी आवृत्ति बढ़ती जाएगी। जब यह टकराकर वापिस लौटेगी तो फिर से कुछ दूरी तय करेगी, एक बार फिर इसकी आवृत्ति बढ़ती जाएगी। अब मूल ध्वनि से इसकी तुलना करके देखा जा सकता है कि उसने कितनी दूरी तय की है। इसके अलावा चमगादड़ों के मस्तिष्क में यह व्यवस्था भी होती है कि वह प्रतिध्वनि का विश्लेषण करके उड़ते हुए कीड़े के बारे में पता लगा सकता है कि वह उड़कर दूर जा रहा है या पास आ रहा है, और किस रफ्तार से।

तो चमगादड़ अपने द्वारा पैदा की गई आवाज़ और उसकी प्रतिध्वनि का विश्लेषण करके काफी कुछ पता कर सकते हैं। उनमें इस क्षमता के विकास को लेकर अभी काफी अस्पष्टता है। मगर एक बात स्पष्ट है। यह क्षमता काफी पहले विकसित हो गई थी क्योंकि उनकी इस क्षमता से निपटने की व्यवस्थाएँ भी प्रकृति में नज़र आती हैं। कई कीटों में यह क्षमता विकसित हो गई है कि वे चमगादड़ द्वारा पैदा की गई अल्ट्रासाउंड ध्वनियों को ताड़ लेते हैं और खुद को सुरक्षित करने के लिए चमगादड़ के मार्ग से हट जाते हैं। जैव-विकास का यह तू डाल-डाल, मैं पात-पात कई जगह नज़र आता है।

सुशील जोशी: एकलव्य द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।